राग मारवा

ममता सिंह

राग मारवा

जिंदगी किसी मुफलिस की कबा तो नहीं

कि जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लगे जाते हैं - फैज

पारुल की खुशी छलक-छलक पड़ रही है। उसका मन आसमान में उड़ा जा रहा है। रूई के फाहों सरीखे बादल उसके ऊपर से उड़ रहे हैं। बादलों का ठंडा स्पर्श मन में पुलक पैदा कर रहा है। इतने सालों तक किराए के घर में मकान मालिक के बनाए नियमों के मुताबिक रहना पड़ता था। फटी दरी जिसमें पैबंद लगे थे, सीलन से कमरे में खास किस्म की गंध पसरी होती थी, जिसे पारुल आज इस खुशी के मौके पर याद नहीं करना चाहती। लेकिन अभावों और परेशानियों में जिया हुआ इतना लंबा समय भला कोई कैसे भूल सकता है। फटी दरी की जगह कालीन बिछ गया है। अब जाकर अपना घर हुआ। खस के पर्दे की जगह ब्लाइंड्स लग गए हैं। सजावट से घर की खुशहाली नजर आ रही है। आज वो 'अपने' घर में है। अब उसे बार बार किराए का घर नहीं बदलना होगा।

मेहमानों का आना शुरू हो गया है। पारुल के पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं। वह पंख लगाकर आसमान में उड़ रही है। इस कमरे से उस कमरे तक जाती है, बरामदे में नए सजाए गमले को घुमाकर ठीक कर देती है, उसे होश नहीं है। खुशी के मारे अपनी सुध-बुध खो बैठी है।

'मुबारक हो पारुल, कितनी नसीब वाली हो। कितना आलीशान घर मिला है तुम्हें। देर आयद-दुरुस्त आयद' - फूलों का गुलदस्ता थमाती हुई रज्जो बोली। शुक्लाइन चाची ने भी सुर मिलाया। 'भई सास हो तो पारुल की सास जैसी, नहीं तो ना हो। इस बुढ़ापे में भी अपने बहू-बेटे का लालन-पालन कितनी कुशलता से कर रही है बेचारी। - सचमुच बड़े दिल वाली और जाँगर वाली है तुम्हारी कुसुम जिज्जी। अपने शौहर के दम पर तो कभी नहीं खरीद सकती थी इतना आलीशान घर - अस्फुट स्वर में बोलती है - नंबर एक का शराबी... बेचारी कुसुम जिज्जी इस बुढ़ापे में भी कितना खटती है इन लोगों के लिए। ऐसा करमजला बेटा किसी को ना मिले, फुसफुसाते हुए रज्जो बोली। बहू कम से कम कुसुम जिज्जी के साथ तो लगी रहती है।

कोई प्यार में नहीं लगी रहती - स्वार्थ से... कुसुम जिज्जी के गाने का प्रोग्राम वही सेट करती है - 'कुसुम जिज्जी गाएँगी तो झोला भर के पैसा आएगा घर में और इनकी

रोजी रोटी चलेगी। इस उम्र में गाना उनके लिए कितना तकलीफदेह होता होगा। इस बुढ़ापे में जब आराम की जरूरत है तो बुढ़िया सबका पेट पाल रही है।' - शुक्लाइन चाची बोलीं।

पारुल के कानों में ये अस्फुट बातें जा रही थीं। ये तल्ख अल्फाज पारुल पर कटार जैसे वार कर रहे थे। मन का कसैलापन चेहरे पर ना झलके, इस प्रयास में दोनों होठों को आपस में रगड़कर वो लिपस्टिक ठीक करने की कोशिश कर रही है। जबर्दस्ती मुस्कुराती हुई साड़ी के पल्लू को आगे कर कमर में खोंसने लगी और दूसरे मेहमानों से मुखातिब हो गई। लेकिन शुक्लाइन चाची कहाँ मानने वाली थीं। रस लेकर बताने लगीं -'पता है रज्जो, इस घर को पाने के लिए इसकी बुढ़िया सास ने ऐड़ी-चोटी का पसीना बहाया है। समाज-सेवियों के चक्कर काटे। नेताओं से सिफारिश की। फिल्मी कलाकारों की चिरौरी की। गिड़गिड़ाई कि मैं इतनी बड़ी गायिका हूँ। इतने सारे कंसर्ट किए, मैंने बड़ी-बड़ी महफिलों में गाया, लेकिन हमारे पास घर नहीं है, वगैरह वगैरह। किसी नेता ने जोड़ तोड़ करके मुफ्त में दिलवाया ये घर। शुक्लाइन चाची की बातें ललाइन चाची अपने मुँह को रूमाल से ढके ऐसे आश्चर्य से सुन रही थीं मानो दुनिया का आठवाँ आश्चर्य बयाँ किया जा रहा हो। सचमुच ये औरतें बातों में इतनी माहिर हैं कि गुड़ रस मलाई बन जाए और रसगुल्ला करेले के रस में बदल जाए। कुसुम जिज्जी के बारे में इस तरह विमर्श हो रहा था, जैसे उन्होंने कोई बुरा काम किया हो।

कुसुम जिज्जी खुश हैं कि नए घर में अब एक कमरा उनका होगा जिसमें वो तितली की तरह उड़ेंगी, सपने बुनेंगी। संगीत के सागर में तैरेंगी। हारमोनियम, तबला, तानपुरा सब उनके आसपास रहेगा। जब चाहे छेड़ेंगी कोई सुर... उन सुरों में फिर उगेंगे ख्वाबों के अंकुर। उन सुरों में पकेगी-घुलेगी फिर से वो चाशनी, जिसका जमाना कभी कायल हुआ करता था। ख्वाबों के कई अंकुर अभी भी फूटने बाकी हैं। बहुत-सी मुरादें कभी पूरी नहीं होतीं। ख्वाबों के वो अंकुर अब यादों के सिक्कों में तब्दील हो गए हैं। कुछ ख्वाब स्टील के बक्से में आज भी बंद हैं, जिसमें पुरानी तसवीरें, अखबारों की कतरनें, कई एल.पी. रिकॉर्ड और सीडीज हैं।

वो गरमी की सुस्त दोपहर थी। सीलन भरे कमरे को पुराने फर्नीचर से नए सलीके से सजा रखा था। पुराना बड़ा-सा टेबल, जिसके पाए दीमक के खाने से खोखले हो रहे

थे... उसी के एक कोने पर ग्रामोफोन रखा रहता था, जो उनके उत्कृष्ट गायन पर किसी कद्रदान ने उपहार-स्वरूप दिया था। गरमी की वो ऐसी उमस भरी, अलसाई दोपहर थी, जब धूप भी छाँव का इंतजार कर रही हो। कुसुम जिज्जी चटाई को पानी से बार-बार भिगो रही थीं, ताकि कमरे में सुकून और ठंडक कायम रहे। वैसे उन्हें हर तरह से सुकून तब मिलता है जब वो अपनी पसंद का संगीत सुनती हैं। उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ उनके पसंदीदा गायक हैं और उनके लिए तालीम की तरह हैं। ग्रामोफोन पर बड़े गुलाम अली खाँ की ठुमरी माँड बज रही है...

याद पिया की आए...

ये दुख सहा ना जाए...

बाली उमरिया सूनी सेजरिया,

जीवन बीतो जाए हाय राम...

ये बंदिश उस्ताद जी ने अपनी पत्नी के गुजर जाने के बाद बनाई थी। किस कदर दर्द रचा-बसा है उनकी आवाज में। कुसुम जिज्जी का मन सुरों के झरने से भीग रहा है। उसी के साथ वे ताल दे रही थीं, मंद मंद मुस्कुरा रही थीं। एक ताल और चार ताल में उन्हें बड़ा संशय होता था। स्कूल के जमाने में 'धिन धिन, धागे तिरकिट, तूना कत्ता' की जगह पर वो 'धा धिन, धिन धा, किट धा, धिन धा' कर देती थीं और टीचर की डाँट मिलती थी लेकिन बाद में उनका यही एक ताल और चार ताल एकदम पक्का हो गया था। क्लास की टेबल या चौके के बर्तनों पर भी वो एक ताल को दुगुन, तिगुन, चौगुन में बजाया करती थीं। बहरहाल... उस्ताद गुलाम अली खाँ को सुनते हुए कुसुम जिज्जी किसी और ही दुनिया में पहुँच गई थीं, जहाँ संगीत की इबादत होती है... तभी इस तपती भीषण गरमी में बिन मौसम बरसात आ गई। बड़ी जोर से बादल गरजे। गड़गड़ाहट से कुसुम जिज्जी के कान झनझना गए। ग्रामोफोन की सुई खट से रिकॉर्ड से हटा दी गई थी। चलता रिकॉर्ड दीवार पर फेंक दिया गया था। 78 आर पी एम का रिकॉर्ड दीवार से टकराकर तड़ाक से टूट गया था और कुसुम जिज्जी का दिल चकनाचूर हो गया था।

...ये लो एक नई सौगात, तुम्हारे उस आशिक का नया पैगाम।

...ओह, गुरूजी ने भेजा...?

...गुरू-शिष्य परंपरा को तुम जैसी दो कौड़ी की गायिकाओं ने बदनाम किया है। मत कहो गुरूजी।

...तुम जैसी गायिकाओं को वो स्टेज पर नहीं ले जाएँगे तो समाज को क्या जवाब देंगे कि बरसों अपने आगोश में बिठाकर क्या सिखाया। इसी बहाने वो अपना नाम भी तो रोशन कर लेते हैं।

...उफ...

...उस्ताद रहमत खाँ, उस्ताद सलामत खाँ... कितने उस्तादों का जी बहलाओगी।

नीले रंग के गिफ्ट रैपर में से छोटा-सा ट्रांजिस्टर झाँक रहा था... जिसे देखकर दर्द के इस अँधेरे में भी कुसुम जिज्जी के लिए जैसे चिराग जल उठा। कुसुम जिज्जी ने आँसुओं से भीगी आँखों को कस के झपकाया, मिचमिचाया, पलकों में बंद दो-तीन बूँदें गालों पर ढुलक गईं। इसी रेडियो ने कुसुम जिज्जी को सुरों की पालकी पर बैठाया था। रेडियो ने ही सुरों के पंख लगाकर उन्हें उड़ना सिखाया था। स्कूल कॉलेज के उन्हीं दिनों में विविध भारती से जब संगीत-सरिता कार्यक्रम प्रसारित होता था तो कुसुम जिज्जी अपनी कॉपी और कलम लेकर बैठ जातीं। रागों के गायन का समय, वादी-संवादी, शुद्ध और कोमल स्वर... सब कुछ बाकायदा नोट करतीं और जो राग जिस प्रहर में गाया बजाया जाता है, उसका अभ्यास वो उसी प्रहर में करतीं। संगीत सरिता सुन सुनकर उन्होंने आकाशवाणी बनारस के शास्त्रीय-संगीत के ऑडीशन की तैयारी की। ऑडीशन पास किया तो अपनी सहेलियों को लड्डू खिलाया। बी ग्रेड और फिर टॉप ग्रेड आर्टिस्ट बनीं। उनकी गायकी के कई टेप तैयार हुए और वो एक प्रतिष्ठित गायिका बन गईं। उनकी 'सुर सरिता' जब पहली बार विविध भारती के एक बड़े और लोकप्रिय कार्यक्रम 'अनुरंजिनी' में बही तो कई दिन तक वो सुरों की बारिश में भीगती रहीं। इस तरह ट्रांजिस्टर कुसुम जिज्जी के जिगर का टुकड़ा बन गया। जहाँ जातीं साथ में एक ट्रांजिस्टर और उसकी बैटरी जरूर ले जातीं। रेडियो से ही

उनकी शोहरत की शुरुआत हुई। गम और तन्हाई के पलों में उनका हमदम भी बना रेडियो। तन्हाई के लम्हों में ली गई अपनी सिसकियों को कुसुम जिज्जी ने रेडियो और अपनी गायकी से ही तो बाँटा। इस पल भी जब पूरे घर पर गम की बदली छाई है, उनका अपना ही जीवन-साथी जब उनका कलेजा छलनी बना रहा है... ये देखकर कुसुम जिज्जी एक बार फिर जिंदगी की सिलवटों को मिटाने के लिए बेतहाशा दौड़ पड़ीं। लेकिन वो ट्रांजिस्टर उनके लिए उस दिन खुशी की सौगात नहीं बल्कि ऐसी आँधी लेकर आया था, जो कई महीनों तक शांत नहीं हुई। गाने के कई मौके हाथ से निकल गए। पंडित जसराज की प्रस्तुति के बाद उनकी प्रस्तुति का मौका जाता रहा। मुंबई में फ़ैज अहमद फ़ैज की गजलें गानी थीं, वो मौका छूटा। ऐसे कई सुनहरे मौके उन्हें अपने घरेलू विवादों के कारण छोड़ने पड़े।

वक्त कभी एक जैसा नहीं रहता। आँधियाँ चलती हैं, थमती भी हैं। कुसुम जिज्जी की जिंदगी में भी बहार आई और पतझरों की दस्तक कम हो गई। बनारस से मुंबई की सुखद यात्रा और बस कुसुम जिज्जी का सुर कोयल-सा कूकने लगा।

नेहरू सेंटर का भव्य हॉल, स्टेज के किनारे किनारे फूलों के वंदनवार सजे थे। मौका था विदुषी गिरिजा देवी और उस्ताद अमजद अली खाँ की कजरी और सरोद की जुगलबंदी की प्रस्तुति का..

'झिर झिर बरसे सावन,

रस बुंदिया की आई गइले ना

अब बहार की... आई गइले ना।'

राग मिश्र माँड में दादरा ताल में निबद्ध इस कजरी की जुगलबंदी पर दर्शक झूम रहे थे जैसे सावन की बयार हो। कुसुम जिज्जी का मन बादलों के बीच उड़ चला था। कजरी की तान पर खूब ऊँची ऊँची पींगें भर रही थीं। उनके मन का झूला आसमान में उड़ा जा रहा था। होंठ इस कजरी के साथ गुनगुना रहे थे। पंडित अच्छेलाल तबला संगत कर रहे थे। 'धा धी ना, धा तू ना, धा धी ना, धा तू ना' दादरा ताल के ठाह, दुगुन और त्रिगुन की ताली के साथ-साथ मन ही मन उनका सोलो गायन भी चलने लगा

था। इसी कजरी के बाद तो कुसुम जिज्जी को भी ठुमरी गानी थी। पहली बार उन्हें इतना बड़ा मौका मिला था। वो आहिस्ता आहिस्ता मंच सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं, होठों से मुस्कान के मोती झर रहे थे, लाल चौड़े पाड़ वाली क्रीम कलर की साड़ी के पल्लू को सलीके से आगे सरकाती हुई मंच पर जब वो बैठीं, और लंबी नाक में चमचमाती हीरे की लौंग पर जैसे ही रोशनी पड़ी - मानो दिए जल उठे। बनारसी पान की ललाई उनके होठों पर ऐसे फब रही थी कि उसके सामने ब्रांडेड लिपस्टिक का रंग भी फीका लगे। आँखों में गहरा काजल, माथे पे लाल बिंदी उनकी खूबसूरती में चार चाँद लगा रहे थे। तानपूरे और तबले के मिलान के बाद जब उन्होंने बोल-आलाप लिया तो दर्शक हवा में इठलाती टहनी की तरह झूमने लगे थे। उन्होंने जब बोल-बनाव की ठुमरी गाई, तो रसिकों के बीच से आवाज आई - 'वाह खटका और मुरकी का कैसा अद्भुत समन्वय है।' उनकी गायकी से, राधा-कृष्ण के प्रेम और नोंक झोंक का दृश्य तिलिस्म पैदा कर रहा था।

बारिश हो या कड़ी धूप, हर मौसम में कुसुम जिज्जी के गायन के कंसर्ट में हॉल खचाखच भरा रहता। हॉल में पिन-ड्रॉप-साइलेन्स बना रहता था शुरू से आखिर तक। कुसुम जिज्जी के पास स्मृतियों का विराट समुद्र है, जिसमें अकसर ही वो गोते लगाती हैं। कई बार तो वो ये भी चाहती हैं कि इन सुरीली यादों की बूँदों से उनके घर वाले भी भीगें। खासतौर पर वो पारुल को बहुत कुछ बताना चाहती हैं क्योंकि पारुल उनके साथ परछाईं की तरह रहती है। लेकिन पारुल के तो अपने ही जोड़-घटाव हैं। कुसुम जिज्जी के करीब बस उतना ही रहना चाहती है, जब तक उसे फायदा पहुँचता रहे। पारुल का बस चले तो कुसुम जिज्जी की यादों के सिक्कों को या तो बाजार में भुनाए या फिर 'फिक्स डिपॉजिट' करके दोगुना होने तक इंतजार करे। लेकिन स्मृतियाँ किसी तिजोरी में भला कहाँ कैद होती हैं, वो तो मन की वादी में हमेशा भटकती हैं तो कुछ स्मृतियाँ इनसान के जीने का मकसद बन जाती हैं। आज जब भी पारुल कुसुम जिज्जी के कंसर्ट के लिए कोई सिटिंग रखती है, तो उनका दिल खुद से विद्रोह करता है... और विद्रोह के पलों में उनका तनाव और दर्द बहने लगता है। दरअसल जब उम्र का सूरज ढलता है तो सपनों के रंग फीके पड़ जाते हैं।

पूरी दुनिया बेनूर लगने लगती है। आवाज में कशिश तब आती है, दिल में खुशी की धूप खिली हो... लेकिन मेरी दुनिया में तो हमेशा ही बदली छाई रही, इतना गहन अँधेरा है कि किसी का चेहरा पहचान नहीं आता। बहू, बेटे, पोते सब अदृश्य हैं। उम्र के इस पड़ाव में इतनी अकेली हूँ जैसे पहाडी किले में कोई मंदिर। कोई भूला-भटका आकर फूल चढ़ा जाता है। मेरे लिए समय जैसे अविरल बहाव है जिसमें ना कोई तारीख है, ना कोई समय, ना ही कोई पर्व है। फिर भी पारुल सिटिंग करती है, तारीख तय करती है और मैं गाने को तैयार हो जाती हूँ... अब और नहीं... आखिर उम्र के इस ढलान में मैं क्यों गाऊँ... किसके लिए गाऊँ... गाकर क्यों इनका पेट पालूँ, जबकि मेरे इस परिवार में मुझे सिर्फ काँटे ही काँटे दिए हैं। पिछली बार जब मैं बीमार होकर बिस्तर पर थी, झूठ-मूठ को भी कोई मेरे पास नहीं फटकता था, जैसे-तैसे बोझ की तरह पारुल दो वक्त खाना पटक जाती थी, वो खाना मैंने खाया या नहीं, ये देखती भी नहीं थी... और मैं अपना काँपता हाथ तकिए के नीचे ले जाकर टटोलती थी, दवा का पत्ता ढूँढ़ती थी और दवा निगल लेती थी। पोते को मेरे करीब इसलिए नहीं आने दिया जाता था कि मेरी बीमारी से उसे इन्फेक्शन ना हो जाए। मेरे कान तरस गए, इस वाक्य के लिए - 'माँ बस करो, तुम अब आराम करो... तुम्हें कुछ चाहिए तो नहीं।' लेकिन कहाँ... इस घर के लिए तो मैं सिर्फ ए.टी.एम. मशीन हूँ। पर क्या कहूँ अपने मन को, ये भी बड़ा अजीब है। नहीं गाती हूँ तो भी चैन नहीं मिलता। बचपन से आज तक गायकी जैसे रगों में घुली मिली है। बिना गाए तो मैं जी भी नहीं सकती। ये गाना ही तो है, जिसने मुझे जिंदगी की कड़ी धूप में ठंडी छाँह दी है।

'...बाजूबंद खुल-खुल जाए सँवरिया रे

कैसा जादू डारा रे...

जादू की पुड़िया भर-भर मारी रे

क्या जाने बैद बिचारा रे...'

राग भैरवी की ये बंदिश उन्हें बहुत पसंद है। अपनी तन्हाई में कुसुम जिज्जी गाने के तरह तरह के प्रयोग करती हैं। अभी वो दीपचंदी ताल की इस बंदिश को कहरवा ताल में बदलने की कोशिश कर रही हैं... धागे नाती नाक धिन...

जैसा मीठा गला, वैसा ही ठसकदार कुसुम जिज्जी के गाने का अंदाज। गरीब परिवार में पली-बढ़ी कुसुम जिज्जी अपनी दम पर कामयाब हुईं। पिता ने उन्हें इस डर से नहीं पढ़ाया कि वो पढ़-लिखकर कर भाग जाएँगी। घर में उनके गाने का जमकर विरोध हुआ। लेकिन कुसुम जिज्जी कहाँ मानने वाली थीं। गायकी उनकी रग-रग में, साँसों में बसी थी। जब वो छोटी थीं, तो गाना सीखने के लिए उन्होंने जिद ठान ली, - 'गाना सिखाओ वरना कुएँ में कूदकर जान दे दूँगी।' घर वाले उनकी जिद के आगे लाचार हुए और उस्ताद रहमत खाँ से गंडा बंधवा दिया और उन्हें गाने की तालीम दिलवाई गई। इस तरह शुरू हुआ था, उनके गाने का सफर। उन्हें गाने और तारीफ बटोरने का इतना शौक था कि शुरुआती दौर में जब वो मंच पर गातीं, तो सहेलियों और रिश्तेदारों से कह देतीं, कि मैं रहूँगी मंच पर, तुम लोग तालियाँ बजाने आना। धीरे-धीरे सिलसिला बढ़ता गया और गायिका के रूप में वो मशहूर होने लगीं।

गायकी तो जैसे उनके लिए कुदरत की एक अनमोल नेमत थी। दर्शकों में बैठे वो लोग, जो पेशे से व्यापारी थे - लेकिन थे संगीत के कद्रदान, कुसुम जिज्जी के शो के बाद उन्हें दंडवत प्रणाम करते और उपहारस्वरूप सोने चाँदी के गहने और रूपए देते थे। गायकी के इन्हीं पैसों और उपहारों से कुसुम जिज्जी के भाई-बहनों की परवरिश हुई। कुसुम जिज्जी बड़ी सरल मिजाज की थीं। जिन्होंने कभी अपने लिए जीना नहीं सीखा। हर कोई उनसे बेपनाह मुहब्बत करता। जब जिसे जरूरत पड़ती वो उनसे पैसे वसूल ले जाता था। आज के जमाने में ऐसी मदर टेरेसा कहाँ मिलेंगी भला। ठसकदार रोबीले व्यक्तित्व को लोग आज भी नमन करते हैं। मजाल है कि उम्र में छोटे लोग उनसे नजर मिलाकर बात करें। बावजूद इसके कुसुम जिज्जी अपनी सरलता और मासूमियत से वो पेशेवर ऊँचाई नहीं छू पाईं जिसकी वो हकदार थीं। अपनी काबलियत से उन्हें शोहरत तो खूब मिली, पर दौलत नहीं मिल पाई, जो उनके ठाट-बाट को रौनक कर सके। लेकिन हाँ, अपनी गायकी के दम पर उन्होंने अपने बेटी-बेटे को अच्छी परवरिश दी।

बेटी तो ब्याहकर चली गई ससुराल, लेकिन बेटा हो गया नालायक। जब तक पति साथ थे, गाने में अड़चनें ही पैदा करते थे। उस जमाने में औरतों का स्टेज पर गाना निचले दर्जे का माना जाता था। उनके पति को कतई गवारा नहीं था कि उनकी धर्म-पत्नी उस जमाने की मशहूर गायिकाओं की तरह कुसुम-बाई के नाम से विख्यात हों। बहरहाल, कुसुम जिज्जी की जिंदगी में परेशानियों की धुंध भी छाई, कामयाबी की रोशनी भी हुई। अँधेरे और उजाले के इस संघर्ष में धीरे-धीरे कुसुम जिज्जी के पास कामयाबी के तमगे आते चले गए। लेकिन उनकी निजी जिंदगी में अँधेरा गहराने लगा। एकाकीपन बढ़ता गया। लेकिन वो थकी नहीं, उम्र की इस दहलीज पर ना आराम है, ना दिली सुकून, ना ही अब वो शोहरत रही। किसी आयोजक का एक फोन आता है, तो पारुल दसियों फोन करती है - और जुगाड़ करके एक स्टेज प्रोग्राम फिक्स करवा ही लेती है। और उसके बाद कुसुम जिज्जी की सिफारिश शुरू कर देती है। फिर तो उनकी सेवा में कोई कमी नहीं रहती। कुसुम जिज्जी को मिश्री डालकर गरम पानी देती है। तुलसी और काली मिर्च का काढ़ा बनाकर देती है। इस डर से कि कहीं उनका गला ना खराब हो जाए। पारुल की इस एहतियात से कुसुम जिज्जी का गला बिलकुल दुरुस्त रहता है। भले ही शरीर उनका जर्जर हो, लेकिन उनका मन और गला कभी नहीं बिगड़ता।

'...दादी दादी, आपकी फोटो फट गई... ये अखबार।'

'...अरे ये तो मेरे सम्मान की तसवीर है रे।'

...लेकिन दादी इस अखबार में भेल वाला भेल बेच रहा था। मैंने देखा तो उससे माँगकर ले आया। मैंने उससे कहा, इस अखबार में मेरी दादी की तसवीर है, दे दो ना।'

...कुसुम जिज्जी अवाक रह गईं। लगा मानो अखबार के टुकड़ों की तरह कुसुम जिज्जी का दिल भी कई टुकड़े हो गया है। दर्द जैसे छाले में बदल गया... तन्हा मन उदासी के उस जंगल में चला गया, जहाँ कोई ऐसा पौधा नहीं जिसमें हरापन हो... शुष्क बेजान... ठूँठ पेड़ों में मैं खोज रही हूँ रिश्तों की बीर-बहूटी। जब यहाँ मिट्टी ही नहीं है, सिर्फ कंकड़-पत्थर वाली बंजर धरती है, तो बीज कैसे रोपे जाएँगे... कहाँ से जड़ पकड़ेगी... ये घर तो दूर तक फैला निर्जन मरुस्थल है जिसमें सिर्फ रेत के टीले हैं, जो

भरभराकर कब के गिर चुके हैं। मुझे ये पता है, फिर भी मैं झूठी उम्मीद पर जी रही हूँ। इस घर में मेरी अहमियत सिर्फ एक ग्रामोफोन जितनी है, जब चाहा बजा लिया, फिर एक कोने में सजा दिया। लेकिन अब मैं इनकी जरूरत नहीं पूरी करूँगी। अब मैं कोई वस्तु बनकर नहीं रहूँगी। पारुल के कहने पर किसी तरह का कंसर्ट या स्टेज प्रोग्राम नहीं करूँगी... लेकिन क्या करूँगी, बार बार मजबूर करती है पारुल मुझे गाने को...।

'...दुल्हन तुमने ये क्या किया?'

'...जिज्जी वो रखने की जगह नहीं थी ना। अब नए घर में ये कूड़ा-कबाड़ कहाँ रखा जाए। इसलिए मैंने रद्दी वाले को दे दिया। हाँ एक कॉपी रख ली है। बस इतना काफी है ना।'

दुल्हन, तुम्हें याद है। इससे भी छोटा घर था, जब रौनक पैदा हुआ था। उसका एक-एक खिलौना, एक एक कपड़ा मैंने सँभाल कर रखा था जिसे झाड़-पोंछकर तुम अब भी इस्तेमाल करती हो।

कूड़ा-कबाड़... अपने आप से ही कुसुम जिज्जी कहती हैं... ये रद्दी, ये कूड़ा-कबाड़ ही मेरे जीवन का आसरा है। इसी ने मेरे भीतर सुरों की सरिता प्रवाहित की है। फाँस की तरह चुभ गया ये शब्द कुसुम जिज्जी के भीतर। कुसुम जिज्जी का मन पीड़ा से आर्द्र हो गया है। ये कागज के टुकड़े, ये तस्वीरों, संगीत की नोट-बुक, बंदिशों की स्वर-लिपियाँ, पुरानी डायरी... इन सबमें दर्ज हैं यादों के दस्तावेज... तनहाइयों का सफर... नोटबुक के पन्नों में मुरझाए फूल मेरे आँसुओं से मुस्कुराने की फरियाद करते हैं। डायरी के पन्नों में कुछ शब्द हैं, कुछ भाव हैं, अँजुरी भर सरगम है जिसके सहारे मैं जीती हूँ, वरना इतनी सारी बीमारियों को ओढ़कर मैं कब की मर चुकी होती। मैं अपने ही कोख-जने बेटे और बहू पर बोझ बन गई हूँ। ये मेरी लाचारी का फायदा उठाते हैं। मेरे दुख, मेरी पीड़ा उन्हें दिखाई नहीं देती। इन लोगों को मुझसे सिर्फ पैसों का सरोकार है। शायद मैं जिस दिन पैसों का जरिया ना रहूँ, उस दिन ये लोग मुझे निकाल फेंकेंगे घर से। इस घर में मेरी रोजमर्रा की जरूरतें तक नहीं पूरी की जातीं। चश्मे की डंडी टूटी है। कई दिनों से एक हाथ से डंडी पकड़कर काम चला रही हूँ। मैं इनके लिए भला क्यों गाऊँ। अब मैं नहीं गाऊँगी। मैं क्यों इतना कष्ट सहूँ इनके लिए। अब तो कुर्सी पर

बैठते भी नहीं बनता... कमर और घुटनों में असह्य पीड़ा होती है। लेकिन करूँ क्या... दुल्हन फिर रोना रोएगी... आप गाएँगी नहीं तो आपके पोते की पढ़ाई का खर्च कहाँ से आएगा, हमारे लिए ना सही, उसके लिए तो गाइए। मैं इनके दिए दुखों से रोज तार-तार होती हूँ फिर भी पारुल की एक चिरौरी पर गाने को तैयार हो जाती हूँ...

...पारुल मेरे तानपूरे का तार टूटा है। कितनी दफे कहा, ठीक करवा दो। गाने की सिटिंग से पहले करवा ही देना जरा... तुमने मेरे ब्लाउज की तुरपाई भी नहीं की ना... लोग क्या कहेंगे कि मैं इतनी बड़ी गायिका, उधड़ा ब्लाउज पहने हूँ। हर प्रोग्राम के बाद जब पैसे मिलते हैं तो सोचती हूँ अपने लिए दो-चार साड़ी-ब्लाउज खरीद लूँगी, लेकिन उससे पहले ही तुम्हारी जरूरत की चीजों की लंबी लिस्ट तैयार हो जाती है। कराहती हुई धीरे-धीरे वो अपने शरीर के बोझ को उठाने की कोशिश करती हैं... सुई में धागा डालने की कोशिश करती हैं... सुई के चुभन से रिसती खून की बूँद को देख रही हैं।

नए घर के हॉल में लोगों की भीड़ जमा है। कुसुम जिज्जी के पिछले कंसर्ट के पैसों से आया नया म्यूजिक सिस्टम तेज तेज बज रहा है और इन आवाजों से कमरा गूँज रहा है। म्यूजिक बंद होने पर लोगों की हँसी और कहकहे छन छनकर भीतर वाले कमरे तक चले आते हैं। जहाँ बैठी हैं कुसुम जिज्जी। चारों ओर संगीत का शोर है। चहल-पहल है। लेकिन कुसुम जिज्जी के भीतर एक खोह है, जहाँ सिर्फ खालीपन है, वीरानी है और है इक दश्त। उनकी घुटनों की तकलीफ बढ़कर ऑस्टियोपोरोसिस में बदल गई है। बिना सहारे के वे उठ नहीं सकतीं वो। पारुल हाथ में उपहारों का बंडल लिए कमरे में दाखिल हुई, जल्दी-जल्दी अलमारी में रखकर बाहर निकल ही रही थी कि कुसुम जिज्जी की आवाज आई, दुल्हन-दुल्हन, भूख लग आई है। खाना ले आ।

- अं.. हाँ जिज्जी।

- गोली खाने का वक्त हो गया है दुल्हन।

- आई जिज्जी, कहती हुई पारुल कमरे से जो बाहर गई तो पलटकर नहीं आई।

जब किसी कंसर्ट की तारीख तय होती है तो दुल्हन कैसे दौड़-दौड़कर मेरी सेवा करती है। कुसुम जिज्जी मन ही मन बुदबुदाईं... उसे तो मिल गया है नया घर। अब

फिलहाल मेरी जरूरत नहीं है। प्रोग्राम खत्म तो कुसुम जिज्जी की देखभाल भी खत्म। रद्दी की टोकरी में पड़े बेकार सामान की तरह मैं घर के एक कोने में पड़ी रहती हूँ... वॉश-रूम जाना है। सालों से डायबिटीज की पीड़ा से जूझ रही हैं। बिना सहारे के वॉश-रूम नहीं जा सकती हूँ... पारुल को ये बात अच्छी तरह पता है... लेकिन वो अपनी खुशियों में मस्त है, उसे तमाशे और नाच के सिवा कुछ नहीं दिखाई दे रहा। मस्त रहें मस्ती में, आग लगे बस्ती में।

बेटे को जब पैसों की जरूरत होती है, तब उसे अपनी माँ यानी कुसुम जिज्जी याद आती हैं। शाम से अब रात हो चली है। पार्टी का शोर मद्धम होता चला जा रहा है और कुसुम जिज्जी के भीतर का अकेलापन भी गहराता जा रहा है। ठसकदार शख्सियत, एक मशहूर गायिका घर के एक कोने में बैठी खाने का इंतजार कर रही है। उसकी भूख शांत हो, तो वो दवा खाए। कोई आए, उन्हें सहारा तो वो वॉश-रूम जाएँ। अब तो उनकी साड़ी भी गीली हो चुकी है। ऑस्टियोपोरोसिस की तकलीफ इन दिनों इतनी बढ़ गई है कि डॉक्टर की दवा भी कभी-कभी काम नहीं करती है। एक की बजाय कई बार दर्द की दो गोलियाँ लेनी पड़ती हैं। थोड़ी राहत और फिर तकलीफ शुरू। कमाल की बात तो ये है कि कुसुम जिज्जी का शरीर तो जर्जर हो गया है लेकिन आवाज आज भी ताजा है, गला उनका आज भी जवान है। आवाज में पहले जैसी बुलंदी, लोच और कशिश बरकरार है। शरीर की तकलीफ मन को भी बेचैन करती है। एक कलाकार बेहद बेचैनी के पलों में अपनी कला से इश्क फरमाता है। जहाँ सारे दर्द, दर्द की सीमा से ऊपर हो जाते हैं। इश्क में दर्द का अहसास मीठा लगता है। अकसर कुसुम जिज्जी के साथ भी ऐसा ही होता है। जब वो कराहने लगती हैं - तो अपने साज उठाती हैं। छेड़ती हैं कोई राग, सुरीले आलाप और तान के बाद... गाती हैं विलंबित और द्रुत ख्याल की बंदिश। और फिर अपनी इस प्रिय ठुमरी में डूब जाती हैं -

'भर भरी आयीं मोरी अँखियाँ पिया बिन...

घिर घिर आई कारी बदरिया...

धड़कन लागी मोरी छतियाँ।'

वर्तमान से जब जी घबराने लगे, हर पल इनसान छटपटाता रहे... अपनी तकलीफों से लाचार होने लगे, तो उसका अतीत में विचरना आदत-सी बन जाती है। अतीत के सबसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़ रही हैं कुसुम जिज्जी। यादों की मीठी बारिश से आज फिर भीगना चाहती हैं वो। कामयाबी के भूले-बिसरे चित्रों को देखना चाहती हैं, मन के आईने में...।

कुसुम जिज्जी बैठे-बैठे ही अपना घुटना मोड़कर घिसट कर थोड़ा आगे तक सरकीं तो तिपाई तक हाथ पहुँच गया। तानपूरे का ऊपरी सिरा हाथ आया, उसे अपनी ओर खींचा। बूढ़े-झुर्रीदार हाथों में इतनी ताकत नहीं बची कि तानपूरे को सही पोज़ीशन में लाकर अपने सामने खड़ा कर सकें। तानपूरा आधा लेटा कर उसका कवर हटाया, साड़ी के पल्लू से उस पर जमी धूल साफ की। और फिर धीरे-धीरे खुलता गया, उनके मन का भीतरी परदा। यादों के साज पर पड़ी गर्द भी साफ होती गई। उस पार ठहरा अतीत, आँखों के सामने झिलमिलाने लगा। अपने गाने पर हॉल में बज रही तालियों की गूँज, उनकी गायकी की लहरों से सराबोर होते दर्शक-श्रोता, ग्रामोफोन कंपनियों के लिए गाना, एल-पी रिकॉर्ड्स का रिलीज होना, दुनिया भर में मशहूर होना, अपना दमकता हुआ जवान चेहरा, रिकॉर्ड के कवर पर छपा अपना श्वेत श्याम चित्र, रिलीज के बाद की पार्टी और रेडियो-पत्र-पत्रिकाओं में इंटरव्यू - चलचित्र की तरह आँखों के सामने घूमने लगे। सरपट भागती ट्रेन की तरह गुजर गए वो दिन। और बचा रह गया पटरियों का धड़कना। कुसुम जिज्जी इस वक्त सवार हैं यादों की ट्रेन पर। अनगिनत स्टेशन आ रहे हैं यादों के। वर्षा-चौमासा के चार दिनों का बहुत बड़ा आयोजन था, जिसमें कजरी, चैती, टप्पा, ठुमरी गाकर खूब शोहरत पाईं और पहली बार उन्होंने आयोजकों के सामने पैसों के लिए जबान खोली थी। उन्हें मुँह-माँगी रकम मिली भी थी। उन्हीं पैसों से बेटे के लिए गाड़ी खरीदी। किराए पर चलवाई। लेकिन 'पूत सपूत तो का धन संचय, पूत कपूत तो का धन संचय'। यादों के समंदर में गोते लगाती कुसुम जिज्जी ने जब तानपूरे के तार को छेड़ा, तो अहसास हुआ कि तार तो कब के ढीले पड़ गए... तानपूरा अब बेसुरा हो गया है, लेकिन एक कलाकार की जिद के सामने साज को अपनी जिद छोड़नी पड़ती है। आखिरकार तानपूरा मिलाया और कुसुम जिज्जी को अहसास ही नहीं हुआ कि उनके कंठ से ठुमरी के ये बोल फूटने लगे हैं...

'घिर आई कारी बदरिया,

राधे बिन लागे ना मोरा जियरा...

बदरा बरसे, नैना बरसे,

घन और श्याम की लागी है होड़वा,

राधे बिन लगो ना मोरा जियरा'।

इस ठुमरी के साथ, बोल-आलाप और बोल-तान कुसुम जिज्जी गा रही हैं। कहीं भी उनका सुर भटक नहीं रहा है। बाकायदा खटका-मुरकी, गमक और मीड़ का वैसा ही प्रयोग जैसा वो मंच पर पहले करती थीं। कुसुम जिज्जी के गाने का वही ठसकदार अंदाज आज भी कायम है। जब मंच पर वो गाती थीं, तो हॉल में तालियों की गूँज होती थी। हालाँकि अब कुसुम जिज्जी सिर्फ दौलत के लिए मजबूरी में गाती हैं, बेटे-बहू की जरूरतों के लिए। पोते को MBA कराना है इसलिए गाती हैं। बेटे को दुकान खरीदनी है। दुल्हन को हर महीने ब्यूटी पार्लर जाने के लिए पैसे चाहिए। सब्जियों, फलों और अनाज के दाम आसमान छू रहे हैं। जिनके घर में हर सदस्य कमाता है, वहाँ भी किल्लत मची है। यहाँ तो ढंग से कमाने वाला कोई है भी नहीं। गाती हूँ मैं, गाने के पैसे लेती है पारुल, उन्हीं पैसों से आता है घरेलू सामान और पकती है रोटी। यही रोटी रोज मुझे सब के खाने के बाद मिलती है। जब सब खा लेते हैं, तब बचा-खुचा खाना मेरे हिस्से में आता है। आज भी जबकि गृहप्रवेश की पार्टी मेरी बदौलत है, फिर भी मुझे ही सबसे अंत में खाना नसीब होगा... कलप रही हूँ मैं भूख से, लेकिन पारुल खुशी के नशे में चूर है। उसे तो होश तब आएगा, जब अगला कोई आयोजक मिलेगा प्रोग्राम के लिए।

'कुसुम जिज्जी, कुसुम जिज्जी, सुनिए तो, गजब हो गया, अपने तो भाग खुल गए'
...ये पारुल थी, जिसकी आवाज सुनकर कुसुम जिज्जी की ठुमरी का स्वर वहीं रुक गया।

- हुआ क्या दुल्हन, तुम्हें कब से आवाज दे रही हूँ। भूख से मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। कमर-घुटने ऐसे अकड़ गए हैं कि बैठे नहीं जा रहा है। कमर दर्द सहा नहीं जा रहा है। गाना शुरू किया तो दर्द जरा कम हुआ। पारुल ने तानपूरा जिज्जी के हाथों से लगभग छीनते हुए जल्दी जल्दी उसे प्रणाम किया, जैसे तानपूरा ही उसकी सास हो। उसे तिपाई पर खड़ा कर दिया।

- 'क्या कर रही हो दुल्हन, मेरा तानपूरा कहाँ हटा रही हो। बड़ी मुश्किल से मैंने इसके तार ठीक किए हैं।

अब कुसुम जिज्जी का मन जैसे दर्द के दरिया में डूबने लगा है। मन ही मन वो कहती हैं - हुँह पारुल को अब सुधि आई है मेरी। लगता है फिर कोई कार्यक्रम जुगाड़ कर आई है... उसका चेहरा देखकर ही मैं भाँप लेती हूँ कि इस बार मुझसे उसे कितना फायदा पहुँचने वाला है। पारुल तानपूरे के एक-एक तार को बेचेगी और एक-एक तार के नोट वसूल करेगी।

- कुसुम जिज्जी, इस बार तो आपके लिए नया तानपूरा खरीद लाएँगे, यही नहीं सितार, गिटार, ढोलक, मंजीरा, हारमोनियम सब खरीद देंगे। इस बार आप हमारा घर दौलत से भर देंगी। अब हम अपनी दुकान खरीद सकेंगे। एक बार जो दुकान चल पड़ेगी, तो फिर आपको हम मसनद पर बिठा कर रखेंगे। आप सिर्फ कंठी-माला लेकर राम नाम जपिएगा। बस एक आखिरी बार हमारे लिए गा दीजिए मंच पर।'

- 'दुल्हन, आँखें थक गईं इंतजार करते करते। भूख से अँतड़ियाँ अंदर घुस गई हैं। होंठ सूखे जा रहे हैं। बार बार जीभ फेर रही हूँ, जबान पर।' ...कहते-कहते कुसुम जिज्जी की आँखों में अटके मोती गालों पर ढुलक आए।

एल.ई.डी. लाईट की तेज रोशनी में भी कुसुम जिज्जी के सामने स्याह अँधेरा छा गया। दिमाग चक्कर खाने लगा। जैसे अब वो गिर पड़ेंगी। हॉल से अभी भी शोर छनकर आ रहा है और कुसुम जिज्जी के कानों को चोट पहुँचा रहा है। - 'कुंडी मत खटकाओ राजा, सीधा अंदर आओ राजा' - पारुल इन बेढब बोलों के साथ सुर मिलाती हुई, झूमती कुसुम जिज्जी के गले में हाथ डालकर झूल गई। कुसुम जिज्जी का नथुना तेज दुर्गंध

से भर जाता है। और वो झटके से अपना मुँह दूसरी तरफ फेर लेती हैं। उनका रुका हुआ बाँध टूट जाता है। दर्द बेतरह फट पड़ता है। शरीर और मन जार-जार रोने लगते हैं। उन्हीं की कमाई से ये घर आबाद हुआ है। और वही घर के एक कोने में अपनी बदनसीबी पर रो रही हैं। उनकी साड़ी अभी और गीली हो गई है। घर के दूसरे हिस्से में जश्न मनाया जा रहा है। गाना गूँज रहा है - 'ले ले रे सेल्फी ले ले रे'। इस गाने पर कुसुम जिज्जी का बेटा नाच तो सकता है लेकिन 'बजरंगी भाईजान' बनकर उन्हें अकेलेपन के महासागर से उबार नहीं सकता।

मेहमान जा चुके हैं। पारुल कुसुम जिज्जी को बच्चों की तरह बहलाने की कोशिश करती है। उन्हें सहारे से उठाकर वॉशरूम ले जाती है। 'सरगम ग्रुप वाले एक बहुत बड़ा स्टेज प्रोग्राम कर रहे हैं। वो लोग आपसे मिलना चाहते हैं। चलिए जिज्जी आपको हाथ मुँह धुलाकर खाना खिला देती हूँ। फिर ये नई साड़ी पहन लीजिए। तैयार हो जाइए। वो लोग अभी आएँगे और आपसे मिलेंगे। एडवांस पचास हजार का चेक देने का वादा कर गए हैं। लगता है हमारे भी अच्छे दिन आ गए हैं जिज्जी'। पारुल खुशी के समंदर में डुबकी लगा रही है। कुसुम जिज्जी उदासी से तार-तार झीनी हुई जा रही हैं, पारुल हाथ में साड़ी लिए खड़ी है। कुसुम जिज्जी साड़ी की तह खोल कर उसमें पड़ी शल ठीक कर रही हैं। पारुल उन्हें हाथों से सहारा देती है। दोहरी हुई कमर के दर्द से कुसुम जिज्जी चीत्कार कर उठती हैं... उफ... घुटने तो सीधे ही नहीं हो रहे दुल्हन... यूँ ही पहना दो ना साड़ी...

उस रात भी पारुल मुझे इसी तरह साड़ी पहना रही थी। पड़ोसी आकर खड़े थे, डॉक्टर के यहाँ ले जाने के लिए ऑटो रिक्शा बुलाया गया था। बीमार हालत में मुझे अकेला छोड़ ये लोग सिनेमा देखने गए थे। पोते ने जिद की थी...

- 'मैं दादी के साथ रहूँगा, बेचारी दादी कैसे उठकर पानी लेगी।'

- 'तांबे वाला लोटा यहाँ भरकर रख देते हैं...' - पारुल बोली थी।

- 'अगर बिजली गुल हो गई तो?'

- 'मोमबत्ती और माचिस भी रखे दे रहे हैं ना, दादी कोई छोटी बच्ची नहीं हैं कि उन्हें अकेला नहीं छोड़ सकते।'

रौनक ने दुल्हन से झुँझलाते हुए अस्फुट स्वर में कहा था - 'जिज्जी तो जी का जंजाल बन गई हैं, अब इनकी वजह से हम सिनेमा में भी ना जाएँ।'

ये सब मैं बीमारी की अशक्त अवस्था में में सुन रही थी... और सचमुच उस दिन बिजली गुल हो गई थी। मुझे जोरों की प्यास लगी थी, मैं पानी लेने के लिए कोशिश करके उठी थी। और धड़ाम... अपने ही गिरने की आवाज से मैं डर गई थी। उसके बाद क्या हुआ... मुझे कुछ होश नहीं। जब मैं चेतन अवस्था में लौटी, तो अपने को अस्पताल के बेड पर पाया था। सलाइन लगा हुआ था... मैं असहय वेदना से कराह रही थी। डॉक्टर के आने पर पारुल ने फुसफुसाकर पूछा, 'कितना खर्चा लगेगा, कितने दिन यहाँ रखना होगा... हमें जितना जल्दी हो सके, प्लीज डिस्चार्ज दे दीजिए... और हाँ डॉक्टर साहब ये बात आप अपने तक ही रखिएगा'।

'...मैं जरिया हूँ कमाई का, लेकिन मेरे इलाज में पैसे ना खर्च हों... पारुल की इन बातों ने आज के इन हालात में मेरा कलेजा चीर दिया था। मेरे घाव पर मरहम की बजाय जैसे नमक घिस दिया गया हो, जैसे मीठी छुरी से मुझे मद्धम-मद्धम हलाल किया जा रहा हो। बूँद-बूँद बह रहा था दर्द का दरिया मेरी आँखों से... बहुत देर तक अस्पताल का सफेद झक तकिया गीला होकर मटमैला हो रहा था। सांत्वना और प्यार के हाथों के स्पर्श के लिए मन जार-जार रोकर तड़पा था उस दिन... उस दिन तो क्या जाने कितने बरस हो गए, स्नेह और अपनेपन की छाँह मिले हुए...। जिंदगी की कड़ी धूप में जब-जब प्यार की प्यास की महसूस हुई, तब-तब कड़वा प्याला ही नसीब हुआ... अब तो लगता है मेरे दुखों के सफर का अंत मेरी आखिरी साँस के विराम पर ही होगा।

कमरे में रखे रेडियो पर कोई **FM** चैनल बज रहा है... पुरानी चीजों को मत फेंकिए... olx पर बेचिए। कुसुम जिज्जी की कराह और ये विज्ञापन दोनों आपस में घुल-मिल गए हैं... और अब बज रही है ये शास्त्रीय बंदिश -

'सखी मोरी कोई ना जाने पीर

मोरे नैना बहाए नीर

साँवरिया मोरा दरस दियो ना

लागे हृदय में तीर...'

ढलती रात के इस सन्नाटे में राग मारवा की ये बंदिश कुसुम जिज्जी के कलेजे में टीस पैदा कर रही है। कुसुम जिज्जी को लग रहा है... ना तो इस रात का कोई अंत है, ना उनकी इस पीड़ा का।